प्रथम अध्याय

"डॉ. शंकर शेष : व्यक्तित्व एंव कृतित्व"

" डॉ. शंकर शेष : व्यक्तित्व एंव कृतित्व "

प्रयोगधर्मी नाटककार डॉ.शंकर शेष जी ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक साहित्य के विकास में अपने योगदान द्वारा अलग पहचान बनाई है। सुविस्तृत पृष्ठभूमि पर चलते हुए अपनी अनन्यसाधारण प्रतिभाशक्ती की क्षमता पर रचनाओंका सृजन किया है। जो हमें जीवन के श्वेत और शाम दोंनो पक्षों का समग्र दर्शन कराती है।

नाट्य कलाकृति के सम्यक अनुसंधान के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले नाटककार के व्यक्तित्व का अध्ययन करें। हर एक नाटककार अपने समय की परिस्थितियाँ एंव यथार्थ से प्रेरित होकर अपने अनुभव के आधारपर साहित्यसृजन करता है। अत: प्रेरणाओं, अनुभवों, विचारों और परिस्थितियों का विश्लेषण आवश्यभावी हैं।

1.1 जीवन परिचय -

1.1.1 पारिवारिक परिवेश -

डॉ. शंकर शेष जी का जन्म 2 अक्तुबर, 1933 मे बिलासपुर के एक सामंत परिवार में हुआ। आप के पिता का नाम श्री नागोराव शेष तथा माता का नाम श्रीमती सावित्री देवी था। आप की 'नाटक मे रुचि' पिता नागोराव जी के कारण निर्माण हुई। इस संदर्भ में डॉ. सुनिलकुमार लवटे जी लिखते है। - " उनके पिता श्री नागोराव शेष संपन्न परिवार में पले इन्सान होने के कारण जिंदादिल आदमी थे। घर मे नौकरों की कनी न थी। बड़ा परिवार था। मेहमानों का आना-जाना तो क्रम सा बना हुआ था। नागोराव जी को कारोबार से जब कभी फुर्सत मिलती, वे नाटक संगीत मे रुचि लेते थे। उन दिनों बिलासपुर में जानकी विलास थिएटर था। बालगंधर्व जैसे जाने माने कलाकार भी यहाँ आकर महफिल सजाया करते थें। संगीत और नाटकों की बढ़ती रुचि ने इस थिएटर को नागोराव की ज़िंदगी का अंग बना ड़ाला था। यहाँ आकर धीरे-धीरे उन्होंने तबला बजाने मे महारत हासिल की थी। वे थिएटर में कभी-कभी तबले की साथ भी दिया करते थे। संगीत और नाटक का यह पागल प्रेमी नाटकादि देखने बिलासपुर से नागपुर जाने में कोई कसर नहीं छोड़ता था। कला, संगीत, नाट्य और ऐश्वर्य से संपन्न इस परिवार में डॉ. शंकर शेष का जन्म 2 अक्तुबर, 1933 में हुआ। " [1] ऐसे माहोल में बड़े होने के कारण उनकी संगीत और नाटक में

रुचि बढ़ गई दूसरी तरफ घर के सुसंस्कृत वातावरण के कारण रामायण और महाभारत की कथाओं के उनके कोमल मन पर संस्कार हो गए।

1.1.2 शिक्षा -

बालक शंकर की आरंभिक शिक्षा बिलासपुर के प्राथमिक विद्यालय में हुई। बचपन से ही उन्होंने कविता लिखना आरंभ कर दिया था। उनके बड़े भाई श्री कृष्णराव शेष के अनुसार- "बचपन से ही शंकर जिज्ञासु प्रवृत्ति का था। और अपने से बड़ों से प्रश्न 'ऐसा क्यों ? यह क्या ? किया करता था। उस की खेल के प्रति साधारण रुचि थी और जादा समय वह पढ़ाई मे ही व्यतित करता था। - माध्यमिक तथा उच्यतर माध्यमिक परीक्षाओं में पहले नम्बर पर आता था। उसे मॅट्रीक में पहला वर्ग प्राप्त हुआ था। और दो विषयों में प्रविणता भी मिली थी। --- शंकर का यह विशेष गुण था कि वह वार्तालाप और तर्कबुध्दि के द्वारा किसी को भी प्रभावित करता था। वह मिलनसार प्रवृत्ति का व्यक्ति था।" [2] इस से हमें उनकी ज्ञानलिप्सा और अध्ययनशीलता का पता चलता है। उनके मातापिता की आथित्यशील वृत्ति का प्रभाव और शंकर जी की अपनी मिलनसार प्रवृत्ति इनका सुंदर मिलाफ उनके व्यक्तित्व को और भी निखरता गया।

जैसे ही बेटे ने हायस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की पिता नागोराव ने उन्हें उच्यशिक्षा पाने हेतू नागपुर के मॉरिस कॉलेज मे दाखिल कराया। वहाँ की महानगरीय संस्कृति ने उन्हें आधुनिक सोच दी। उन्हें जीवन की ओर देखने की नई दृष्टि प्राप्त हुई।

1.1.3 साहित्य सृजन प्रारंभ -

नागपुर आकर उन्हें नया साहित्यिक परिवेश मिला। इस संदर्भ में डॉ. विनय लिखते हैं- "इन्टर मिडिएट करने के पश्चात जब वे बी.ए. ऑनर्स करने नागपुर गये, तब उन्हें एक साहित्यिक परिवेश मिला। डॉ. विनय मोहन शर्मा जैसे गुरु का मार्गदर्शन भी मिला और उनके लेखन को नये आयाम प्राप्त हुए।" [3] 1952 से 1956 तक के चार वर्षो की लंबी अवधि ने पढ़ाई के साथ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं मे छपने के लिए वे अपनी छुटपुट रचनाएँ भेजते रहें। "इन दिनों आप की छुटपुट रचनाएँ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थी। तुकबंदी की निष्क्रियता का आपको जैसे-जैसे एहसास होता गया, आपकी लेखनी ने पद्य की ओर से मुँह फेर कर गद्य रचना आरंभ कर दी। धीरे-धीरे कथा की जगह एकांकियो ने ले ली। डॉ. शेष ने

नाट्यकला विरासत में पायी थी। अब उसका स्वाभाविक अविष्कार हुआ। डॉ. शेष के लिखे रेडिओ रुपक उन दिनों चर्चा का विषय बन गये थे।- शंकर शेष इस नाम के साथ 'नाटककार ' लिखवा देने का श्रेय भी इसी कॉलेज को जायेगा। डॉ. शेष का आरंभिक उपलब्ध नाटक ' मूर्तिकार ' (1955) इन्हीं दिनों की उपज है।'' [4] केवल बाइस साल की छोटी उम्र में ही आकाशवाणी जैसे सशक्त माध्यम से अपनी रचनाओं के प्रसारण करने का अवसर मिलने के कारण शंकर जी का आत्मबल बढ़ता गया। रेडिओ रुपक के लिए बड़ी संख्या मे श्रोता वर्ग मिलने के कारण उन्हें और अधिक रचनाओं का सृजन करने की प्रेरणा मिल गई। ''डॉ. शंकर शेष ने 'मुर्तिकार' एकांकी नाटक नागपुर के मेडिकल कॉलेज के छात्रों के माँग के कारण लिखा था। मंचन जब सफ़ल हुआ तब उसे श्रीनगर में सम्पन्न एक नाटक प्रतियोगिता में सफ़लता से खेला गया। प्रतियोगिता में प्रस्तुत नाटक ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।'' [5] रेडिओ रुपक के कारण मिली प्रतिष्ठा और श्रीनगर में सम्पन्न प्रतियोगिता में उनके नाटक को मिला प्रथम स्थान इन दो घटनाओं के परिणामों का अध्ययन हम जब करते हैं तब यह निष्कर्ष निकलता है कि यह दो घटनाएँ डॉ.शंकर शेष के जीवन में नया मोड़ लेकर आयी। उनकी प्रेरक शक्ति बन गई। इन घटनाओं के तुरंत बाद (1955 से 1958) सिर्फ़ चार वर्षो मे रत्नगर्भा (1955), नयी सभ्यता के नये नमुने, 'बेटों वाला बाप'(1958), 'तिल का ताड' (1958), 'बिना बाती के दिप' (1958), बाढ़ का पानी (1958) जैसे पाँच नाटक, 'विवाह मंडप' और 'हिंदी' का भूत जैसी दो एकांकी और 'तेंदू के पत्ते' नाम का एक उपन्यास लिखा। उस के आगे और रचनाओं के निर्माण का सिलसिला शुरु हुआ।

1.1.4 अर्थोपार्जन -

'' सन (1955) में नागपुर विश्वविद्यालय की बी. ए. की उपाधि आनर्स के साथ जीविका के लिए अनेक पर्याय होते हुए भी आपने अध्यापक बनना स्वीकार किया। - मध्यप्रदेश शिक्षा सेवा में वे भर्ती हुए और मॉरिस कॉलेज में ही उन्होंने अधिव्याख्याता का पदभार सँभाला।'' [6] एक आदर्श अध्यापक के रुप में वे अपनी कल्पनाओं को व्यवहार के धरातल पर स्थापित करना चाहते थे। नौकरी के कामों का परिणाम अपने लेखन कार्य पर उन्होंने कभी भी नहीं होने दिया। '' इसी बीच रायपूर के निवासी डॉ. रामचंद्र नारायण अत्रे एवं सौ. नलिनी रामचंद्र अत्रे की कन्या सुश्री सुधा से डॉ. शंकर शेष का विवाह 19 दिसम्बर, 1958 को सम्पन्न हुआ।'' [7] उसके बाद सरकारी नौकरी होने के कारण समय समय पर उनका तबादला

होता रहा। सन 1959 से 1965 तक उनका काल रीवॉ एवं शहडोल के शासकीय कॉलेजों में व्यतीत हुआ। तबादले के कारण नागपुर, रीवॉ एवं शहडोल भटकते रहने पर भी उन्होंने अपना लेखन एवं अनुसंधान कार्य जारी रखा।

" रीवॉ जाकर 1961 में डॉ. गोपाल गुप्ता के निर्देशन में उन्होंने अनुसन्धान कार्य पूरा किया। नागपुर विश्वविद्यालय ने ही 'हिंदी और मराठी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' पर सन 1961 में पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की ---- डॉ. शेष की नियुक्ति मध्यप्रदेश सरकार के अन्तर्गत शिक्षा सेवा विभाग से आदिम जाति अनुसन्धान संस्थान में हुई।" [8] इस संस्थान में आप को भाषा और संस्कृति प्रभाग में अनुसंधान अधिकारी का पदभार सौंपा गया। यह नियुक्ति डॉ. शेष जी के लिए लाभप्रद साबित हुई। डॉ. शेष का जन्म अमीर परिवार में हुआ था। घर में उनकी निगरानी घर की जो नौकरानी किया करती थी। उसकी छत्तीसगढ़ी बोली का प्रभाव उन पर पड गया था। बचपन में होनेवाली जिज्ञासुवृत्ती के कारण इस भाषा के प्रति उनके मन मे लगाव सा पैदा हुआ था। इस संस्थान में आते ही यह लगाव दृढ़तर हुआ। उनमें जो ज्ञानलिप्सा थी उसने उन्हें कभी स्वस्थ नहीं बैठने दिया। तीन वर्षो के अल्प कार्यकाल में बिलासपुर, रायपुर के बीच पडनवाले छत्तीसगढ़ परिवेश की भाषा का उन्होंने भाषा शास्त्रीय अध्ययन किया।- "इस अनुसंधान कार्य के असाधरण महत्व को जानकर मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी ने उसे प्रकाशित किया। 'छत्तीसगढ़ी भाषा का शास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक यह ग्रंथ उनकी अध्यवसायिता का प्रमाण है।" [9] उसके तुरंत बाद 1967 में उन्होंने 'आदिम जाति शब्द संग्रह एवं भाषा शास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक से और एक अनुसंधान कार्य किया।

सन 1968 में डॉ. शेष जी पुनश्च मध्यप्रदेश शिक्षा सेवा में शामिल हुए। उन्होंने दो वर्षो तक भोपाल के हमीदिया कॉलेज मे हिंदी का अध्यापन किया। सन 1970 में सरकार ने दुबारा उनकी प्रतिनियुक्ति कर मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी का सहायक संचालक बनाया। ग्रंथ अकादमी का सहवास मिलने से उनकी कलम में नया निखार आया। इसी काल में (1970 से 1974 तक) 'खजुराहो का शिल्पी', 'फन्दी', 'एक और द्रोणाचार्य', कालजयी जैसी श्रेष्टतम रचनाओं का सृजन हुआ। उसके साथ 'चेतना' और 'खजुराहो की अलका' यह दो उपन्यास और दो अनुदित नाटकों का लेखन भी उन्होंने किया।

हर समय नया परिवर्तन यह डॉ. शेष जी के जीवन का मानो एक हिस्सा ही बन गया था। हर परिवर्तन के काबू में रखने की कोशिश में वे हमेशा सफल रहें। " सन 1970 से लेकर 1974 तक

'मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल में सहायक संचालक के रुप में पदभार संभालकर डॉ. शंकर शेष ने इस पद का इस्तीफ़ा दे दिया और वे भारतीय स्टैट बैंक में आ गये।'' [10] स्टैट बैंक के मुंबई स्थित केंद्रीय कार्यालय में राजभाषा विभाग के मुख्य अधिकारी के रूप में आप ने पदभार संभाला। मुंबई में आने के बाद उनकी गतिविधियाँ काफ़ी बढ़ी। चित्रपटों के लिए कथा संवाद लिखने के साथ दूरदर्शन के लिए रुपक लिखना भी शुरु किया। राजभाषा विभाग में नई योजनाएँ कार्यान्वित कर दी। मुंबई में आने के बाद 'घरौंदा' 'अरे ! मायावी सरोवर' 'रक्तबीज', 'राक्षस ', 'पोस्टर', 'चेहरे', 'कोमल गांधार' और 'त्रिकोण का चौथा कोण' जैसे एक से बढ़कर एक नाटकोंका लेखन किया। घरौंदा को सन 1978 में आशिर्वाद पुरस्कार प्राप्त 'दूरियाँ' फिल्म की पटकथा को आशिर्वाद पुरस्कार के साथ-साथ फिल्मफेअर पुरस्कार भी मिला।'' [11]

सन 1981 की दिपावली की छुट्टियों को मनाने वे सहपरिवार कश्मिर गये थे। ' छुट्टियाँ मनाते हुए अचानक उनकी मृत्यु हुई। 28 नवम्बर, 1981 को वे स्वर्ग सिधारे '' [12] नियति के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे छिन लिया।

1.2 व्यक्तित्व -

1.2.1 संघर्षमय जीवन -

डॉ. शंकर शेष जी का बचपन बड़ा आराम से गुजरा था। घर में काफ़ी नौकर-चाकर थे। लेकिन अमीरी का भूत उनके उपर कभी चढ़ा नहीं। बचपन से वे बड़े ही विनम्र रहे। उनका संपूर्ण जीवन संघर्षमय तथा आर्थिक कठिनाइयों का डटकर सामना करने में बीत गया। फिर भी वे अविचल योध्दा की तरह जूझते हुए जीवनपथ की ओर अग्रेसर हुए। अनुभवों के निष्कर्ष पर उन्होंने अपने जीवन का मार्ग बनाया। प्रथम पदवी के उपरांन्त कड़ी मेहनत करने के बाद भी उन्हें कटू अनुभव आते गये। उनकी योग्यता होने पर भी कई बार उँचा पद, सन्मान आदि से हाथ धोना पडा लेकिन डॉ. शेष जी कभी निराश नहीं हुए। बहती हुई सरिता की तरह वे कठिनाईयों से भी मार्ग निकालते रहे। इस संबंध मे डॉ. सुनिलकुमार लवटे जी का कथन उनके व्यक्तित्व को और भी पारदर्शक बना देता है। - '' कुछ पाने के लिए वे जुझना आवश्यक मानते थे। संघर्ष पर उनको गहरी श्रध्दा थी। ---- कलम और कोशिश उनके जीवन के सख्त स्तंभ थे। ज़िंदगी मे आनेवाली हर चुनौती का सामना करते समय, उन्होंने अनुठे साहस का परिचय दिया। हर उत्तरदायित्व को लगन से निभाना उनकी सहज प्रवृत्ति थी।'' [13] इसी कारण 'अध्यापक' से लेकर

'अनुसंधान अधिकारी' तक और 'ग्रंथ अकादमी का सहाय्यक संचालक ' से लेकर 'स्टेट बैंक के राजभाषा अधिकारी' तक विभिन्न पदोंपर और विभिन्न विभागों में काम किया लेकिन अपने आप को कभी भी खंडीत नहीं होने दिया।

अपने साथ दूसरों में भी आत्मविश्वास तथा संघर्षशीलता का इस गुण विशेष निर्माण हो इसके लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। उनकी पत्नी सुधाजी लिखती है। - ''शंकर ने मुझे जीवन को देखने की एक दृष्टि दी। जिसने मुझे तटस्था से जीना सिखाया। हर परिस्थिती से जूझने की शक्ति दी।'' [14] सरकारी कार्य प्रणाली में व्याप्त तृटियों से वे काफ़ी नाराज रहते थे। लाल फितशाही की करतुतों के कारण उनका दूरदर्शन पर देरी से आमगमन हुआ। परंतु निराशा ने उन्हें की कमजोर नहीं बनाया। अपनी क्षमता पर उन्हें बेहद विश्वास था। कहा करते थे - '' कब तक बंद रहेंगे ये धोबी के कपाट, कभी तो खुलेंगे। मै निराश नहीं हूँ। दस्तक में दम होगी तो साले भर से खुल जायेंगे।'' [15] यह वाक्य वक्तव्य उनमें व्याप्त आत्मबल और काम के प्रति अविचल निष्ठा एवं लगन का निर्देशक है।

1.2.2 संवेदनशील और विनम्र -

डॉ. शेष जी के जीवन का अधिकांश काल प्रशासक के रुप में बीता। प्रशासक के लिए उपयुक्त और अनुशासन के लिए सहाय्यक 'गंभीर व्यक्तित्व ' होता है। वह उनमें था। वे गंभीर व्यक्तित्व वाले दिखाई तो देते थे। लेकीन वास्तव में बड़े जिंदादिल इन्सान थे। मिठे बोल बोलकर सभी को मित्र बनाने की कला उनमे ठूस-ठूस कर भरी हुई थी। उनके अकृत्रिम व्यवहार के कारण जो भी उनके संपर्क में आ जाता वह सदा के लिए उनका बन जाता। उनके मिलनसालवृत्ति के कारण उनके कार्यकाल में शिकायत भरी उंगली उनपर किसी ने कभी भी नहीं उठाई सचमुच ही डॉ. शेष एक आदर्श कलाकार थे। समृध्दि और सन्मान के नशा में चूर होकर अहंकारी और बदचलन बनकर अपने आप को कभी भी चारित्र्यहीन नहीं बनने दिया। डॉ. सुनिलकुमार लवटे जी उनके बारे मे लिखते है- '' उनके संपर्क में मैने अपने आप को गौरवान्वित अनुभव किया। मैने देखा की सचमुच वे बड़े उदार आदमी थे। बड़े आदमी थे। परंतु उनका बड़प्पन कभी किसी आदमी को छोटा नहीं बना देता धा।'' [16] उँचा से उँचा पद पाकर भी वे अत्यंत विनम्र रहें। अनुसंधान अधिकारी की हैसियत से जब भी उनका गरीब, अनपढ़ लोगों से संपर्क आता था। तब वे उनसे बड़े ही प्रेमपूर्ण बर्ताव करते थे।

1.2.3 जिंदादिल और अतिथ्यशील -

अपना दुख भुलाकर दूसरों की ओर ध्यान देना उनकी खॉसीयत थी। उन्होंने मनुष्य से जादा पैसों को कभी भी अहमियत नहीं दी। बिमार होने पर भी दूसरों को मदत करने दौडते रहते थें। सुधा जी हमेशा शिकायत करती थी। - " मुझे चिन्ता होती उनकी तबियत की। लेकीन वे अपनी दुनिया में ही मस्त रहते। कभी-कभी मुझे क्रोध आता कि घर में पैर रखते ही उन्हें अपने सारे दर्द याद आ जाते। वरना उनमें इतना जोश होता कि किसी को विश्वास भी नहीं होता कि वे बीमार है। " [17] उनके इस स्वभाव के कारण घर में दिनभर दोस्तों का मेला सा लगा रहता। शेष जी अपनी क्षमता से जादा पैसा उनपर उड़ा देते थे। उनके दोस्त श्री रज्जन त्रिवेदी के अनुसार - " दोस्तों के बिना रह पाना उसके लिए कठिन था।" [18] इसी बात की पुष्टि सुधा जी करती है। - "अतिथि हमारे यहाँ देवता से बढ़कर होता है।" [19] लेकिन इस आदत के कारण कभी-कभी डॉ. शेष जी के परिवारवालों को आर्थिक विवंचनाओंका सामना कभी-कभी करना पडता था। परिणाम स्वरुप सुधा जी ने नौकरी पकड़ ली थी। सुधा जी भी आतिथ्यशील थी। लेकिन वह भी कभी-कभी परेशान हो जाती थी। जब डॉ. शेष जी यह देखते तब लगातार एक ही रट लगाते रहते कि हमारा अतिथ्यभाव कम हो गया है। यह सिर्फ़ घर में ही होता था। ऐसी बात नहीं थी। मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी के भूतपूर्व संचालक और जबलपुर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री का मंतव्य अत्यंत मननिय है। - " डॉ. शेष का मन अदम्य उत्साह, वाणी उद्‌बोधक ओजस और लेखनी अपराजेय उर्जा से परिप्लुत थी। शेष जी में अपूर्व संगठन शक्ति थी। वह सबको साथ लेकर चलने की कला मे निपुण थे। आगतों पर अपना प्रभाव छोड़ना, यथासंभव सबकी सहायता करना और हर ठौंर अपनेपन के निश्चल वातावरण का निर्माण करना, उनके स्वभाव का गुण था। इस सब बातों ने उन्हें प्रदेशभर में लोकप्रियता प्रदान की थी।" [20]

1.2.4 अध्ययनशील -

डॉ. शेष में अध्यापक वृत्ति रग रग में भरी हुई थी। कहीं से भी किताब पैदा करते और दिन रात उस में खोये रहते। अर्थाभाव के दिनों में भी पुस्तक खरीदते रहें। किताबें तो उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। जब उनका तबादला हो जाता तब गृहस्थी की अपेक्षा किताबों का बोझ ही अधिक रहता था। बचपन से ही रामायण और महाभारत ने उन्हें काफ़ी प्रभावित किया था। उनके द्‌वारा लिखे

मिथक नाटक इसी का प्रमाण हैं।

1.2.5 प्रभावी वक्ता -

एक अच्छे रचनाकार होने के साथ डॉ. शेष जी की खॉसियत थी किएक अच्छे वक्ता भी थे। वे अपने मधुर भाषण से श्रोतागणों को मंत्रमुग्ध कर देते थे। विषय का गहरा चिंतन यह उनके भाषण का केंद्रबिंदू रहता था। इसी कारण दूर-दूर की अनेक जगहों से उन्हें भाषण के लिए आमंत्रित किया जाता था।

1.2.6 ज्ञानलिप्सा -

बचपन में डॉ. शेषजी आदर्श विद्यार्थी माने जाते थे। जीवन के अंतिम क्षण तक उन्होंने यह विद्यार्थी धर्म निभाया। अपनी ज्ञानलिप्सा को जीवन के अंतिम क्षणतक बरकरार रखा। सन 1961 मे एक बार पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त दो अनुसंधानात्मक प्रबन्ध लिखें। मुंबई में जब आये थे तब उनकी उम्र पैंतालीस साल की थी। उस उम्र में उन्होंने भाषाशास्त्र में एम. ए. की उपाधि लेने की ठान ली। उस वक्त वे 'घरौंदा' फिल्म के लिए पटकथा लिख रहे थे। बैंक मे अधिकारी होने के कारण ऑफीस का काम, दौरे बढ़ते जा रहे थे। उस वक्त वे बीस घंटे काम किया करते थे। इस परीक्षा में वे प्रथम श्रेणी में पास हुए। इतना ही नहीं उन्होंने विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान पाया।

1.2.7 हॅसमुख -

डॉ. शेष जी स्वभाव से अत्यंत फक्कड थे। दुसरो को आनंद बाटते हुए जोर-जोर से ठहाके के साथ हॉसना उनकी खॉसियत थी। जीवन की आखरी समय में भी बिमारी में
हँसी मजाक करते हुए पत्नी सुधा से कहते थे- "जितने दिन जीना है उतने दिन मौज-मस्ती से जी लो। मुझे भी जीने दो।" [21]

1.2.8 आत्मपरिक्षणभाव -

उनमें आत्मपरिक्षण करने का भाव जागृत था। सामनेवाला बड़ा आदमी हो अथवा छोटा आदमी लेकिन उसके पास से स्वीकार करने लायक कोई राय हो तो उसका वे मूल्यमापन भी करते थे। नाटक का मंचन करते समय निर्देशक को नाटक में परिवर्तन करने के लिए खुली छूट देकर अपनी उदार दृष्टि

का परिचय देते थे। प्रसिध्द फिल्म निर्देशक भिमसेन जी आप के बारेमें लिखते है- '' एक लेखक के रुप में मैने शेष को बेहद सहयोगी पाया। जहाँ कही भी मीडियम के अनुसार या उसकी माँग पर कुछ परिवर्तन की बाते आती थी तो वे तुरंत तैयार हो जाते थे। उनकी सबसे बड़ी खुबी यह थी कि वह उस काम को जल्दी करते थे, और लेखकों की तरह नहीं कि परिवर्तन के नाम से अपने अहम पर चोट समझे और फिर दोबार लिखने में बहुत अधिक समय लगा दे। '' [22]

1.3 कृतित्व -

डॉ. शेष की प्रतिभा प्रमुखत: नाटककार की रही। उन्होंने ढ़ेर सारी रचनाओं का निर्माण किया किंतु उन्होंने कभी पैसों के लिए, पुरस्कार के लिए लेखन नहीं किया। उन्होंने कलम उठाई तो केवल अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने के लिए। अपने मित्र तथा पाक्षिक 'सारिका' के भूतपूर्व संपादक नंदन जी से कहाँ करते थे। - '' अरे लिखवा लो जो कुछ लिखवाना हो। लिखने की उमर जादा नहीं रहा करती। अपनी कलम में दम है। लेकिन में जानता हूँ, लिखने को तुम तब कहोगे, जब हाथ और मुंडियाँ दोनों के साथ कलम भी कांपने लग जायेगी - और यही चीज मुझे पसंत नहीं है। पता नही लोग बुढ़े दिमाग से कैसे लिखते है।'' [23]

जब तक रचना का पूर्ण रुप से निर्माण नहीं होता तब तक वे बेचैन रहते पूरी रचना के साथ तादात्म्य भाव से व्यवहार करते थे। 'फंदी' की भूमिका में अंकित उनका यह वक्तव्य कि- ''पिछले एक साल से मैं बराबर 'फंदी' के साथ जी रहा हूँ '' [24] इसी बात का प्रमाण है। लेखन करते वक्त डॉ. शेष जी अपनी रचना को कठोर परिश्रम से बार-बार रुप देते थे। एक बार लेखन करने के बाद वे पढ़कर दुसरों को दिखाते। उनकी राय योग्य हो तो स्वीकारते हुऐ स्वयं दोबारा शुध्द रुप देते। इसके साथ उनके अंदर एक विशेष बात विद्यमान थी कि वे एक ही कथ्य को छोटे नाटक, संभव हो तो बड़े नाटक और यदि संभव हो तो उपन्यास का रुप देने में नहीं हिचकिचाते थे। 'खजुराहो का शिल्पी' यह नाटक और 'खजुराहो की अलका' यह उपन्यास इस बात का सबुत है। उनमें विद्यमान आत्मसुधार का भाव तो अत्यंत सराहनिय था।

डॉ. शेष जी ने नाट्य लेखन में कल्पना से जादा वास्तव का सहारा लिया। अपने जीवन में प्राप्त अनुभवों को दृश्य रुप में चित्रित किया। जब वे रीवॉ मे रहते थे। एक दिन उन्होंने एक ट्रिप अरेंज की थी। - ''जब खजुराहो पहुँचे तब मैं (सुधाजी) थक कर चूर थी। लेकिन शेष जी मानो भावविभोर हो गए थे।

वे उसका गर्भगृह छत, छत की प्रतिमाएँ, उनकी भावभंगिमाएँ देखने में डूब कुतूहल मानो समा नहीं रहा था। मन में प्रश्न था, मंदिर के बाहर के प्रांगण में कामचेष्टाओं की ये मूर्तियाँ क्यो ? उन्होंने उस समय जो भी उपलब्ध इतिहास था। उसे एकत्र किया। हम लोगों में से कितने लोगों ने मंदिर देखते समय इन बातों का विचार किया होगा। लेकिन कई दिनों तक वे मंदिर, वह घंटानाद, वहाँ का शिल्प उन्हें मथता रहा। यही शायद भोपाल जाफर 'खजुराहो का शिल्पी' के रुप मे उभर कर आया।'' [25] 'पोस्टर' नाटक की जन्म कथा कुछ-कुछ इसी प्रकार है। डॉ. शंकर शेष जी जब अनुसंधान अधिकारी की हैसियत से काम कर रहे थे तब उन्होंने मध्यप्रदेश के बस्तर तथा नारायणपुरकी आदिम जाति के जनजीवन को करीब से देखा था। महिने मे बीस दिन तक आदिम विभागों का दौरा करना पडता था। वहाँ के भूमिहीन किसानोंपर जमींदार और वन अधिकारी, पुलिस सभी मिलजूलकर अत्याचार करते देखकर वे बेचैन हो जाते फिर सरकारी नौकरियों के दॉवपेच, लोंगो के बंधे हुए हसे सभी कुछ ने उनके संवेदनशील मन पर एक आघात पहुचाया। अत: उनके मन मे आदिम लोगों के प्रति गहरी करुणजनक आस्था ने अपनी जगह बनाली। वह सब आगे चलकर 'पोस्टर' के रुप में उभरा।

मुंबई जैसे महानगरे में जब रहने लगे तब काम से लौटते वक्त चर्चगेट पर भीड़ घटने की प्रतीक्षा में वे अक्सर किसी रेस्तराँ मे चाय पीने बैठते। वहाँ उन्हें दिखाई देता एक अधेड़ उम्र का जोडा जो वर्षो से वहाँ आता था। घर न होने के कारण विवाह नहीं कर सका था। सुधा जी जहाँ नौकरी करती थी वहाँ की कुछ सहशिक्षिकाएँ ऐसी ही थी। दो कमरे अथवा एक कमरे के घरों में माता-पिता, भाई-भाभी, उनकें बच्चे और ये लडकियाँ रसोई में या किसी कॉरीडोर में रात बितातीं। घर के अभाव में विवाह असंभव था। शंकर जी और सुधा जी में अक्सर इस पर चर्चा होती, शंकर जी का संवेदनशील मन इस समस्या से बहुत द्रवित हुआ। और 'घरौंदा' नाटक का जन्म हुआ।

जब डॉ. शेष जी मुंबई में स्टेट बैंक में राजभाषा अधिकारी के पदपर काम कर रहे थे। तब डॉ. रघुवीर शब्दकोष के अलावा दूसरी कोई भी शब्दावलियाँ अस्तित्व में नहीं थी। तब बैंकींग शब्दावली बनाने का काम आपने अपने हाथ में ले लिया। वह काम आपने कड़ी मेहनत और इमानदारी से किया। वैसे तो ये कार्य अन्य बैंकों को भी सौंपा गया था पर आप का काम सबसे अधिक हुआ। पर वे एक सरकारी बैठक में तबियत खराब होने से जा नहीं पाए और शब्दावली का सारा श्रेय रिजर्व बैंक को गया। परिश्रम का कहीं उल्लेख भी नहीं हुआ। उनके भावनाओंको बड़ा धक्का लगा। मानवी मूल्यों की इस तरह की

अवहेलनाओं की प्रवृत्तियों , को उन्होंने 'रक्तबीज' के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

डॉ. शेष मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग से सोलह साल तक जुड़े रहे थे। अत: वे उस क्षेत्र की स्थितियों से भली भाँती परिचित थे। शिक्षा क्षेत्र मे व्याप्त भ्रष्टाचार, घिनौनी राजनीति, अनीति, चरित्र्यहीनता अदि ने उनके मन को उदविग्न कर दिया था। वहीं बेचैनी 'एक और द्रोणाचार्य' के रूप में अभिव्यक्त हुई।

उनकी जादा तर रचनाएँ उनके व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित रचना हैं। अपने जीवन में जो देखा, परखा, भोगा, पाया तथा कुछ खोना भी परा। इसी का यथार्थ और स्पष्ट लेखा-जोखा पाठक के सामने उन्होंने प्रस्तुत किया है।

डॉ. शेष की प्रमुख पहचान एक नाटककार की है। कुल मिलाकर इक्कीस नाटक, दो बालनाटक, चार अनुदित नाटक, छ एकांकी, तीन फिल्मी नाटक, तीन शोध प्रबंध, चार उपन्यास इतनी सशक्त और सोददेश्य रचनात्मक कृतियाँ देने में वे सफल रहे हैं।

डॉ. शंकर शेषजी साहित्य संपदा

1.	सन 1955	मूर्तिकार
2.	" 1956	रत्नगर्भा
3.	" 1956	नयी सभ्यता के नये नमूने
4.	" 1958	बेटों वाला बाप
5.	" 1958	तिल का ताड
6.	" 1958	बिना बाती के दीप
7.	" 1968	बाढ़ का पानी
8.	" 1969	बंधन अपने अपने
9.	" 1970 •	खजुराहो का शिल्पी
10.	" 1971	फंदी
11.	" 1971	एक और द्रोणाचार्य
12.	सन 1973	कालजयी (हिंदी)

13.	सन 1973	कालजयी (मराठी)
14.	'' 1974	घरौंदा
15.	'' 1974	अरे ! मायावी सरोवर
16.	'' 1976	रक्तबीज
17.	'' 1977	राक्षस
18.	'' 1977	पोस्टर
19.	'' 1978	चेहरे
20.	'' 1979	त्रिकोण का चौथा कोण
21.	'' 1979	कोमल गांधार
22.	'' 1981	आधी रात के बाद

एकांकी

23.	सन 1957	विवाह मंडप
24.	'' 1958	हिन्दी का भूत
25.	'' 1971	त्रिभुज का चौथा कोण
26.	सन 1979	एक प्याला कॉफी (अंग्रेजी प्ले)
27.	'' 1981	अजायबघर, पुलिया, सोपकेस

बाल नाटक

28.	सन 1973	दर्द का इलाज
29.	'' 1973	मिठाई की चोरी

अनुदित नाटक

30.	सन 1959	दूर के दीप
31.	'' 1972	एक और गाँव
32.	'' 1973	चल मेरे कद्दू ठुम्मक ठुम्मक
33.	'' 1981	पंचतंत्र और गार्बो

उपन्यास

34.	सन 1956	तेंदू के पत्ते (अप्राप्त)
35.	'' 1971	चेतना
36.	'' 1972	खजुराहो की अलका
37.	'' 1980	धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रे (अपूर्ण)

अनुसंधानात्मक प्रबंध

38.	सन 1961	हिंदी और मराठी कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
39.	'' 1965	छत्तीसगढ़ी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन
40.	'' 1967	आदिम जाति शब्द संग्रह एवं भाषाशास्त्रीय अध्ययन

पटकथा : संवाद

41.	सन 1978	घरौंदा
42.	'' 1979	दूरियाँ

पच्चीस वर्ष के कम समय में परिवारिक और नौंकरी की सभी जिम्मेदारियों को निभाते हुए डॉ. शेष जी ने अपना रचनात्मक संसार खड़ा कर दिया है। उनकी हमेशा एक ही इच्छा रही कि उनका लेखन आम जनता तक पहुँचता रहे। वे अपने नाटकों को अपने पुत्र मानते थे। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने समाज में व्याप्त समस्याओं को मुखर स्वर दिया है। '' शेष का नाट्यसाहित्य किसी विचारधारा की सीमा में आबध्द न होकर आज के जीवन की विरुपताओं के नंगेपन, जटिल, असंगत स्थितियों के दोहरेपन, अन्तर्विरोधों से युक्त जीवन को अनेक एंगलों से जाँचता-परखता है। यदि आज जीवन में आस्था-अनास्था का द्वंद्व है, नैराश्य और असुरक्षा की भावना की प्रबलता है, मृत्युबोध की अनुभूति है, आत्मनिर्वासन, ऊब-खीझ-क्षोभ बढ़ रहे हैं, विरोध एवं विद्रोह निरर्थक हो गए और मनुष्य संत्रास कुण्ठा, प्रवंचना, विघटन, अजनबीपन, विद्रुपता से आतंकित-सशंकित है, तो शेष के नाटक उसकी सही तस्वीर प्रस्तुत करते है। '' [26]

निष्कर्ष -

डॉ. शेष जी की समग्र जीवनी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के इस आलेख का मूल्यांकन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है। साहित्य, नाटक, संगीत की विरासत डॉ. शेष जी को अपने पिता नागोराव से मिली थी। डॉ शेष का जन्म बडे अमीर, सामन्त परिवार में हुआ किन्तु जीवनभर उन्होंने अपने मन की अमीरी दिखाई। मिलनसार वृत्ति, विनम्रता यह उनके व्यक्तित्व की खॉसियत रही। इसी लिए मनुष्य से जादा उन्होंने पैसों को जादा अहमियत कभी नहीं दी। वे बड़े संवेदनाक्षम थे इसी कारण समाज में जो भी घटना दिखाई देती थी। उसका उनपर तुरंत प्रभाव पडता था और वे कलम से उसे तुरंत प्रतिबिम्बित कर देते थे। नियमित रुप से लिखना उनकी वृत्ति बन गई थी। अनुसंधान के क्षेत्र में उन्होंने जो योगदान दिया है। वह उनकी अध्ययनशीलता का प्रमाण है। उन्होंने लेखन में सदा नये-नये प्रयोग किए।

विचारों को लेकर कृतित्व और 'अपना व्यक्तित्व' इनकें बीच उन्होंने परस्पर सामंजस्य प्रदान किया था। चरित्र्यहीनता और मूल्योंका अवमूल्यन इससे वे कोसों दूर रहें। हर समस्या के साथ जूझना, संघर्ष करते रहना, निराश कभी न होना यह उनकी खास विशेषताएँ थी। इसी आत्मबल का सब में निर्माण हो इसलिए उन्होंने अपने रचनाओं की निर्मिती की। उनके निजी ज़िंदगी में आए हुए अनुभव और उनके नाटकों की कथ्य इसमें बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है।

केवल 'पढ़ने के लिए योग्य' इस संकल्पना में अटके हुए नाट्य परंपरा को पढ़ने के साथ साथ मंचन के लिए योग्य बनाकर अपनी क्षमता का परिचय दिया उनके इक्कीस नाटकों में बीस नाटकोंका सफल मंचन इसी बात का प्रमाण है। दर्शक को संस्कारित करना उनके लेखन का प्रमुख उद्देश रहा।

जीवन और साहित्य संबंधी दृष्टि प्रगतिशील रही। युग का पथप्रदर्शन करने का साहित्यकार का जो दायित्व होता है। उसे शंकर शेष जी ने बखुबी निभाया। उनकी परिश्रमवृत्ति, आत्मविश्वास से परिपूर्ण महत्वकांक्षीवृत्ति का असर उनके साहित्य रचनाओं में दिखाई देता हैं। इसी कारण उनकी रचनाओं में संघर्ष और दर्द के साथ आशा की किरण भी विद्यमान है। जो जीने के लिए नई उम्मीद प्रदान करती है। डॉ. शंकर शेष सच्चे रंगकर्मी थे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व आनेवाली पीढ़ियों के लिए आदर्शभूत रहेगा।

संदर्भ सूची -

1.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 2
2.	श्री कृष्णराव शेष	-शंकर शेष - रचनावली -एक	- पृ. 92
3.	डॉ. विन्य	-शंकर शेष - रचनावली -एक	- पृ. 14
4.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 3
5.	डॉ. प्रकाश जाधव	-डॉ शंकर शेष का नाटक साहित्य	- पृ. 11
6.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 3
7.	डॉ. प्रकाश जाधव	-रंगधर्मी नाटककार डॉ.शंकर शेष	- पृ. 20
8.	डॉ. सुरेश एवं डॉ विणा गौतम	- राजपथ से जनपथ नटशिल्पी शंकर शेष	- पृ. 29
9.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 4
10.	डॉ. प्रकाश जाधव	-रंगधर्मी नाटककार डॉ. शंकर शेष	- पृ. 22
11.	डॉ. सुरेश एवं डॉ विणा गौतम	-राजपथ से जनपथ नटशिल्पी शंकर शेष	- पृ. 40
12.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 6
13.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 6
14.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (श्रीमती सुधा शेष-एक साथ की गाथा)	- पृ. 73-74
15.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 7
16.	डॉ. सुनिलकुमार लवटे	-नाटककार शंकर शेष	- पृ. 8
17.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (श्रीमती सुधा शेष-एक साथ की गाथा)	- पृ. 65
18.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (रज्जन तिवारी-रचना धर्मी शंकर शेष)	- पृ. 88
19.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (श्रीमती सुधा शेष-एक साथ की गाथा)	- पृ. 52

20.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री-डॉ. शंकर शेष एक जीवंत स्मृति)	- पृ. 79
21.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (श्रीमती सुधा शेष-एक साथ की गाथा)	- पृ. 70
22.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (भिमसेन - उन्होंने मुझे बेहद सहयोग दिया)	- पृ. 83
23.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक	- पृ. 20
24.	डॉ.शंकर शेष	- फंदी	- दो शब्द से
25.	(सं) डॉ. विनय	-शंकर शेष - रचनावली-एक (श्रीमती सुधा शेष-एक साथ की गाथा)	- पृ. 44-45
26.	डॉ. सुरेश एवं डॉ विणा गौतम	-राजपथ से जनपथ नटशिल्पी शंकर शेष	- पृ. 17